9

साधारण स्वर-२

वैदिक काल से लेकर के आज भी गुरुकुलो में तथा विभिन्न प्रतिष्ठानो में गुरु शिष्य माध्यम से वेदपाठ प्रचलित है। वेदों के पाठ गुरु परम्परा के अनुसार स्वर सहित करते है। अत: वेद में स्वर का स्थान सबसे ऊपर है। केवल वेद पाठ से ही वेद में कहा पर क्या स्वर होगा ऐसा विद्वान मनुष्य जानने में समर्थ नहीं हो सकते है। अत: व्याकरण से स्वर निर्णय करने की कुशलता सभी को विदित ही है। बहुत काल पहले ही महर्षि पाणिनि ने सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय के स्वर निर्णय के लिए सूत्रों की रचना की। उन सूत्रों में कुछ विशिष्ट प्रयोग पाणिनि के द्वारा निर्देश नहीं किया है। अत: बाद के काल में वार्तिककार ने कुछ वार्तिकों की रचना की है। अत: इस पाठ में साधारण स्वर प्रतिपादक पाणिनीय सूत्र तथा वार्तिको की आलोचना की है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- सूत्रों के द्वारा स्वर सिद्धि प्रक्रिया को समझ पाने में;
- स्वर सम्बन्धी वार्तिकों को जान पाने में;
- एकश्रुति विषय को जान पाने में;
- सूत्र अर्थ के समन्वय को समझ पाने में; और
- साधारण स्वर विषय में सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर पाने में।

9.1 उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः॥ (८.४.६६)

सूत्र का अर्थ – उदात्त से उत्तर अनुदात्त को स्वरित आदेश होता है।

सूत्र की व्याख्या – छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से स्वरित स्वर का विधान करते हैं। उदात्ताद् अनुदात्तस्य स्वरितः ये सूत्र आये हुए पदच्छेद हैं। तीन पद वाले इस सूत्र में उदात्ताद् यह पञ्चमी का एकवचनान्त है, अनुदात्तस्य यह षष्ठी का एकवचनान्त है, स्वरितः यह प्रथमा का एकवचनान्त पद है। स्वरितः यह प्रथमान्त होने से इसका ही विधायक है। उदात्ताद् अनुदात्तस्य स्वरितः इति सूत्र में आये हुए पद योजना है। उदात्ताद् यहाँ पञ्चमी निर्देश होने से 'तस्मादित्युत्तरस्य' इस परिभाषा से उदात्त से उत्तर का यह अर्थ प्राप्त होता है। और इस प्रकार इस सूत्र का अर्थ होता है उदात्त से परे अनुदात्त को स्वरित स्वर होता है।

उदाहरण– अग्निमीळे (अग्निमींळे) इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय– अग्निमीळे यहाँ पर गति अर्थ की अगि धातु से 'धातोः' इस सूत्र के अनुसार से अकार उदात्त है। उसके बाद 'अङ्गेर्नलोपश्च' इस सूत्र से नि-प्रत्यय होने पर इस धातु का इकार इत होने से (अगि-धातु इकार इत्संज्ञक है) इदितो नुम् धातोः इससे नुम आगम और अनुबन्ध लोप होने पर इस स्थिति में नकार का उससे ही (अङ्गेर्नलोपश्च) सूत्र से लोप होने पर अग्नि शब्द निष्पन्न होता है। यहाँ नि प्रत्यय का नकार से उत्तर इकार 'आद्युदात्तश्च' इससे उदात्त है। इस प्रकार अग्नि यहाँ पर दो उदात्त स्वर है, एक धातु का दूसरा प्रत्यय का। यहाँ अगि धातु से अकार का उदात्त स्वर धातुपाठ में निर्देश किया है, परन्तु नि-प्रत्यय के इकार का उदात्त स्वर सूत्र से उपदेश किया है, अतः 'सतिशिष्टस्वरो बलीयान्' (६.१.१५८) इस परिभाषा सूत्र से बाद में होने वाला स्वर का (पर निर्देश किया स्वर) बलवान होता है। उसको 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' इस सूत्र से धातु के (अगि-इसके) अकार का अनुदात्त स्वर है प्रत्यय का नहीं है। इसी प्रकार अग्नि-यहाँ पर अकार अनुदात्त, इकार उदात्त ये सिद्ध होते है। उस अम्-प्रत्यय के करने पर 'अनुदात्तौ सुप्पिता' इससे अनुदात्त स्वर है। वहाँ अग्नि अम् इस स्थिति में 'अमि पूर्वः' इससे उदात्त-इकार का और अनुदात्त-अकार के स्थान में पूर्वरूप एकादेश इकार में 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' इससे उसका (इकार का) उदात्त स्वर है। ईड स्तुतौ इस धातु से लट लकार उत्तम पुरुष एकवचन में 'ईळे' यह रूप बनता है। यहाँ पर 'द्वयोश्चास्य स्वरयोर्मध्यमेत्य संपद्यते स डकारो लकारः' इस प्रातिशाख्य वचन से डकार के स्थान में लकार होता है। यहाँ अग्निम् ईळे इस स्थिति में 'तिङ्ङतिङः' इस सूत्र से सभी को अनुदात्त स्वर प्राप्त होता है। इसी प्रकार यहाँ उदात्त से (इकार से) पर अनुदात्त का (ईकार का) वर्तमान से प्रकृत सूत्र के द्वारा पर अनुदात्त के स्थान में स्वरित स्वर होता है। ईळे यहाँ पर स्वरित ईकार से परे ळे इसके एकार के अनुदात्त होने से 'स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्' इस सूत्र से एकार की एकश्रुति स्वर (उदात्त अनुदात्त स्वरित का तिरोधान) होता है। इस प्रकार अग्निमीळे यह रूप सिद्ध होता है।

विशेष– यहाँ पर 'अग्निम् ईळे' उदात्त अनुदात्त के (इकार-ईकार के) मध्य में मकार की विद्यमानता होने से कैसे इकार से परे ईकार को स्वरित स्वर होता है इस प्रकार कहा है, 'स्वरविधौ

टिप्पणियाँ

व्यञ्जनमविद्यमानवद्' इस परिभाषा से यहाँ मकार के विद्यमान होने पर भी स्वर विधि के नहीं होने से उसको ग्रहण नहीं करते है, उससे यहाँ मकार से व्यवधान का अभाव होने से स्वरित का कोई तोड़ नहीं है।

प्रकृत सूत्र आठवें अध्याय के चौथे पाद में है, अतः तीन पाद में स्थित इस सूत्र से जिस स्वरित स्वर का नियम किया है, वह 'अनुदात्तं पदमेकं वर्जम्' (६.१.१५८) इस सवा सात्त अध्याय में स्थित सूत्र की दृष्टि से असिद्ध है। इसलिए ईळे यहाँ पर 'अनुदात्तं पदम् एकवर्जम्' यह सूत्र यहाँ पर नहीं लगता है। उस के द्वारा उदात्त स्वरित दोनों ही स्वर सुने जाते है।

9.2 नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्।। (८.४.६७)

सूत्र का अर्थ - उदात्त परे है जिससे एवं स्वरित परे है जिससे ऐसे अनुदात्त को स्वरित नहीं होता है। गार्ग्य आदि मत को छोड़कर।

सूत्र की व्याख्या - छ प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह निषेध विधायक सूत्र है। इस सूत्र से स्वरित स्वर का निषेध होता है। न उदात्तस्वरितोदम् अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् ये सूत्र में आये हुए पदच्छेद है। तीन पद वाले इस सूत्र में न यह अव्ययपद है, उदात्तस्वरितोदयम् यह प्रथमा एकवचनान्त है, अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। उदात्तस्वरितोदयं न अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् यह सूत्र में आये पद का अन्वय है। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' इस सूत्र से अनुदात्तस्य इस षष्ठ्यन्त पद की और स्वरितः इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। उदात्तश्च स्वरितश्च उदात्तस्वरितौ उदयौ यस्माद् इति उदात्तस्वरितोदयम् इति बहुव्रीहिसमासः। उदय शब्द पर शब्द से समान अर्थ है ऐसा प्रातिशाख्यों में प्रसिद्ध है। उदात्त स्वर परे जिसका उस प्रकार के, अथवा स्वरित स्वर परे जिसका उस प्रकार के अनुदात्त स्वर का यह अर्थ है। न गार्ग्यकाश्यपगालवानाम् इति अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् इति नञ्समासः। गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में तो नहीं होता है यह अर्थ है। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' इस सूत्र का ही यहाँ निषेध है। उससे सूत्र का अर्थ होता है, उदात्त परे और स्वरित परे जो अनुदात्त, उसको 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' इस सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर नहीं होता है, गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में तो होता ही है।

उदाहरण- वोश्वाः क्वां १ भीशवः (ऋ.५।६१।१२) इति। प्र य आ रुः इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- यहाँ पर क्व शब्द से उत्तर 'किमोऽत्' इस सूत्रे से अत्-प्रत्यय करने पर तथा 'क्वाति' इससे किमः के स्थान में क्व- यह आदेश होने पर क्व-यह रूप सिद्ध होता है। अत्-प्रत्यय के तकार की इत्संज्ञक होने से 'तित्स्वरितम्' इस सूत्र से अत्-प्रत्ययान्त के क्व-शब्द का अकार का स्वरित स्वर है। युष्मद् के स्थान में वस् यह आदेश होने पर सकार को रुत्व होने पर 'अतो रोरप्लुतादप्लुते' इससे रु के उत्व होने पर 'आद्गुणः' इससे अकार-उकार के स्थान में गुण ओकार होकर के वो-यह रूप सिद्ध होता है। यहाँ वस्-यह आदेश 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' इसके अधिकार में होता है अतः वकार से उत्तर अकार अनुदात्त है। अशू-धातु से 'अशूप्रुषिलटिकनिखटिविशिभ्यः क्वन्' इस उणादि सूत्र से क्वन्-प्रत्यय करने पर बहुवचन प्रक्रिया में अश्वाः यह रूप सिद्ध होता है। क्वन्-प्रत्यय के नकार की इत् संज्ञा होती है, अतः क्वन् प्रत्ययान्त

अश्व शब्द 'त्रिनत्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र के अनुसार से आद्युदात्त होता है। उसके बाद में 'वो अश्वाः' इस स्थिति में 'एङः पदान्तादति' इस सूत्र से ओकार-अकार के स्थान में पूर्वरूप होने पर 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' इस सूत्र से वकार से उत्तर उकार उदात्त है, 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' इस सूत्र के अनुसार से श्वा- यहाँ पर आकार अनुदात्त है। यहाँ वोऽश्वाः (वः अश्वाः) क्व इस वकार से उत्तर उकार उदात्त है, श्व से उत्तर आकार अनुदात्त तथा क्व से उत्तर अकार स्वरित है। इस प्रकार यहाँ उदात्त से परे अनुदात्त के होने से 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' इस पूर्वसूत्र से अनुदात्त को स्वरित स्वर की प्राप्ति होने पर उसका स्वरित परे होने से इस प्रकृत सूत्र से, पूर्व सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर का निषेध होता है। उससे जैसे पहले अनुदात्त स्वर था वैसे ही रहेगा।

प्र य आ रुः यहाँ पर ये यह यत् शब्द का प्रथमा बहुवचन फिट् स्वर से 'फिषोऽन्त उदात्तः' इस सूत्र से अन्त उदात्त है। 'अतेर्लिटि' प्रथमा बहुवचन में झि प्रत्यय करने पर आरुः यह रूप बनता है। यहाँ पर 'परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः' इससे उस्-प्रत्यय का नियम किया है और वह प्रत्यय स्वर से उदात्त है। आरुः यहाँ पर आकार का 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः' इससे अनुदात्त स्वर है। इस प्रकार यहाँ यकार से उत्तर अकार उदात्त है, आकार अनुदात्त है, और रुः का उकार उदात्त है। उससे यहाँ उदात्त से परे अनुदात्त के होने से 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' इस पूर्व सूत्र से अनुदात्त के स्थान में स्वरित की प्राप्ति, उसका उदात्त परे होने पर प्रकृत सूत्र से पूर्व सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर का निषेध होता है। उससे जैसे पूर्व अनुदात्त स्वर था वैसे ही रहेगा। इससे प्र य आ रुः यह सिद्ध होता है।

गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में तो स्वरित का निषेध नहीं होता है, अपितु पूर्व सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर ही होता है।

विशेष- निश्चित रूप से 'अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः' (आदि मात्रा के कम होने पर भी पुत्र उत्सव के समान वैयाकरण उत्सव मनाते है) वह यहाँ पर कैसे उदय शब्द के प्रयोग उस स्थल में पर शब्द के प्रयोग से तो लघु होता तो यहाँ कहते है की उदय शब्द मङ्गलार्थ है। 'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाणि भवन्त्यायुष्मत्पुरुषाणि च' इस प्रकार वृद्धिरादैच् इस सूत्रभाष्य में पतञ्जलि ने कहा है। यहाँ उदय शब्द के प्रयोग से पाणिनि के द्वारा मङ्गल किया है, ये एक समाधान है।

दूसरा समाधान होता है की पर्यायवाची के ग्रहण करने में लघु गुरु की चिन्ता नहीं करते है इस नियम से यहाँ पर-पर्याय का उदय शब्द के ग्रहण करने में कोई हानि नहीं है।

पाठगत प्रश्न 9.1

1. उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः इस सूत्र से किस स्वर का विधान है?
2. 'अग्निमीळे' यहाँ पर मकार से उत्तर ईकार का क्या स्वर है?
3. 'ईळे' यहाँ पर 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' यह सूत्र कैसे नहीं लगा?

टिप्पणियाँ

4. उदात्त परे का, स्वरित परे का अनुदात्त का स्वरित निषेध किससे होता है?
5. किनके मत में उदात्त के परे स्वरित के परे अनुदात्त को स्वरित होता है?
6. 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्' इस सूत्र में उदय शब्द का क्या अर्थ है?

9.3 एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ॥ (१.२.३३)

सूत्र का अर्थ - दूर से बुलाने में वाक्य एकश्रुति हो जाता है।

सूत्र की व्याख्या - छः प्रकार के सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से वाक्यों की एकश्रुति होने का विधान है। एकश्रुतौ दूरात् सम्बुद्धौ ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। यहाँ पर दूरात् इसमें 'दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च' इस सूत्र से पञ्चमी, सम्बुद्धौ यहाँ पर सप्तमी एकवचन है। और भी एकश्रुति यहाँ नपुंसक लिङ्ग प्रथमा एकवचनान्त पद वाक्य है प्रथमा एकवचनान्त पद का विशेषण है। अतः वहाँ नपुसंक लिङ्ग में प्रथमा एकवचन है। और इस प्रकार दूरात् सम्बुद्धौ वाक्यम् एकश्रुति ये यहाँ सूत्र में आये पदो का अन्वय है।

सूत्र में सम्बुद्धौ इस पद से 'एकवचनं सम्बुद्धिः' इस सूत्र से निर्दिष्ट पारिभाषिक सम्बुद्धि शब्द का बोध नहीं करना है, अपितु सम्बुद्धिः- भली प्रकार से किसी को बुलाना यह अर्थ लिया है। वैसे ही दूरात् इस पञ्चम्यन्त पद का यहाँ वर्तमान सम्बुद्धि से इस शब्द का यहाँ अन्वर्थ रूप से ग्रहण किया है। 'एकवचनं सम्बुद्धिः' इस सूत्र में निर्दिष्ट सम्बुद्धि शब्द का सम्बन्ध तो दूर से है, प्रकृत सूत्र स्थित पद से नहीं हो सकता है। अतः जिस वाक्य से सम्बोधन करते हैं, वह संबोधन है, अर्थात् सम्बुद्धि यह अर्थ यहाँ जानना चाहिए। और उस प्रकार के वाक्य का प्रकृत सूत्र से एकश्रुति होने का विधान है।

यहाँ एकश्रुतिः इस पद में विग्रह क्या है? क्या 'एकस्य श्रुतिः इति', अथवा एका चासौ श्रुतिः' च इति। इस प्रश्न के होने पर कहा जाता है, एकश्रुतिः इस पद में 'एका चासौ श्रुतिः चेति' इस विग्रह में एकश्रुति है, एकश्रुति है इस वाक्य की इति एकश्रुति है। यहाँ श्रुतिः यह वेद का पर्यायवाची शब्द नहीं है। यहाँ श्रवण अर्थ में श्रु-धातु से क्तिन्-प्रत्यय करने पर और विभक्ति कार्य में श्रुतिः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। और उसका सुनना यह अर्थ है। एक ही श्रुति अर्थात् एक श्रवण यह ही अर्थ है। जिस वाक्य में श्रवण का भेद नहीं है, अर्थात् जहाँ भिन्न श्रुति न हो वह ही वाक्य एकश्रुति कहलाता है। यहाँ किसका अभेद है? इस जिज्ञासा में कहते हैं, उदात्त आदि के स्वरो का। और इस प्रकार प्रकृत सूत्र से वाक्यों का उदात्त आदि स्वरों के अभेद का विधान है। उसके द्वारा सूत्र का अर्थ होता है - दूर से बुलाने के अर्थ में अर्थात् सम्बोधन वाक्य में एकश्रुति होती है।

उदाहरण - आगच्छ भो माणवक देवदत्त।

सूत्र अर्थ का समन्वय -यहा वाक्य आगच्छ भों माणवक देववत्त यह है। यह वाक्य जब दूर से किसी को सम्बोधन करने में प्रयोग करते हैं, तब प्रकृत सूत्र यहाँ उदात्त अनुदात्त आदि स्वर गत

भेद को दूर करने से तथा एक का ही उदात्त स्वर का विधान करने से आगच्छ भो माणवक देवदत्त यहाँ एकश्रुति में उदात्त स्वर का ही समावेश होता है।

यहाँ दूर से सम्बोधन होता है, तो ही प्रकृत सूत्र से उस सम्बोधन बोधक पद में एकश्रुति करने का विधान है, अन्यथा एक श्रुति नहीं होती है। जैसे - आगच्छ भों माणवक देवदत्त इस वाक्य को जब पास से ही बुलाने का विधान है, तब उदात्त अनुदात्त आदि स्वर वहाँ होते है।

विशेष- यहाँ दूरं नाम कितने दूर को इस प्रकार की जिज्ञासा स्वाभाविकता से होती ही है। उसका समाधान कहते है की जितने स्थान में स्वाभाविक प्रयत्न से उच्चारण करने पर सम्बोध्य मान व्यक्ति को नहीं सुनाई देता है, उस स्थान को ही दूर शब्द से ग्रहण करते है। इसी प्रकार 'दूराद्धूते च' इत्यादि सूत्र में भी जानना चाहिए।

9.4 यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु॥ (२.१.३४)

सूत्र का अर्थ - यज्ञकर्म में मन्त्र एकश्रुति हो जाते है, जप न्यूङ्ख साम को छोड़कर।

सूत्र की व्याख्या - संज्ञा-परिभाषा-विधि-नियम-अतिदेश-अधिकार छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इससे जप आदि से भिन्न प्रयोगो में वाक्यो के एकश्रुति होने का विधान है। यज्ञकर्मणि अजपन्यूङ्खसामसु यह सूत्र में आये पदच्छेद है। वहाँ यज्ञकर्मणि यह सप्तमी एकवचनान्त पद है, और अजपन्यूङ्खसामसु ये सप्तमी बहुवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ एकश्रुति इस नपुसंक लिङ्ग प्रथमा एकवचनान्त विधेय बोध पद की अनुवृति है। यज्ञ का कर्म यज्ञकर्म यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास है, उस यज्ञकर्म में। जप, न्यूङ्ख और साम जपन्यूङ्खसामानि, न जपन्यूङ्खसामानि अजपन्यूङ्खसामानि, उन अजपन्यूङ्खसामसु यहाँ द्वन्द्वगर्भ नञ्तत्पुरुष समास है। और इस प्रकार यहाँ पर अजपन्यूङ्खसामसु यज्ञकर्मणि एकश्रुति ये सूत्र में आया अन्वय है। और उससे यहाँ सूत्र का अर्थ होता है - यज्ञकर्म में उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरो की एकश्रुति होती है, जप न्यूङ्ख साम को छोड़कर। इस सूत्र का मन्त्र एकश्रुति होता है यह इसका सार है।

जप अनुकरण मन्त्र अथवा उपांशु प्रयोग, न्यूङ्ख सोलह प्रकार का ओंकार, उससे यहाँ मन्त्र उच्चारण का प्रकार विशेष जानना चाहिए। साम वाक्य विशेष में स्थित गीत है। वहाँ जप में, न्यूङ्ख में और साम में उदात्त अनुदात्त आदि स्वर युक्त मन्त्रों का उच्चारण है। यहाँ कहते हैं की यदि इनसे भिन्न यज्ञ सम्बन्धी कर्म में मन्त्रों का प्रयोग होता है, तो उनके मन्त्रों की एकश्रुति होती है। अर्थात् उन यज्ञकर्म में प्रयुङ्क्त मन्त्रों में उदात्त, अनुदात्त आदि भेद नहीं रहता है।

उदाहरण - अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्वतो३म् (ऋ. ८.४४.१६)।

सूत्र अर्थ का समन्वय - उदाहरण रूप में दिया यह मन्त्र यज्ञकर्म में प्रयुङ्क्त है। अतः प्रकृत सूत्र से इस मन्त्र में एकश्रुति का विधान है। उससे यहाँ उदात्त आदि स्वरों का भेद नहीं दिखाई देता है। अतः यहाँ उदात्त स्वरो का ही समावेश दिखाई देता है।

टिप्पणियाँ

यहाँ यह जानना चाहिए की जब जप में, न्यूङ्ख में, और साम में मन्त्रों का प्रयोग होता है, तब प्रकृत सूत्र से यह एकश्रुति नहीं होती है। जैसे - यहाँ उदाहरण रूप से दिए मन्त्र का जब सपाठ में अर्थात् स्वाध्यायकाल में प्रयोग होता है, तब एकश्रुति नहीं होती है। इसी प्रकार जप में प्रयुङ्क्त मन्त्रों की भी एकश्रुति नहीं होती है। न्यूङ्ख सोलह प्रकार के ओकार, उनमे कुछ उदात्त और कुछ अनुदात्त है। अथ वहाँ पर भी प्रकृत सूत्र से एकश्रुति नहीं होती है। साम में भी वैसे ही एकाश्रुति नहीं होती है। जैसे वहाँ उदाहरण है - ए३ विश्वं समन्त्रिणं दह३ इति।

9.5 उच्चौस्तरां वा वषट्कारः॥ (१.२.३५)

सूत्र का अर्थ - यज्ञकर्म में वौषट्- शब्द उदाततर विकल्प से होता है पक्ष में एकश्रुति है।

सूत्र की व्याख्या - छ प्रकार के सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इससे वौषट्- शब्द की विकल्प से उदात्ततर, और एकश्रुतिका विधान है। उच्चौस्तरां वा वषट्कारः ये तीन पद यहाँ है। वहाँ उच्चौस्तराम् इति और वा इति ये दो अव्ययपद हैं, वषट्कारः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु इस सूत्र से यहाँ यज्ञकर्मणि इस सप्तमी एकवचनान्त पद की, एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ इस सूत्र से एकश्रुति इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। उच्चौस्तराम् इसका अर्थ उदात्ततर है। स्वरित स्वर से यदि अनुदात्त स्वर होता है, तब स्वरित स्वर का आधा भाग उदात्ततर स्वर विशिष्ट होता है। वषट्कार- इस शब्द से यहाँ वौषट् इस अव्यय का ग्रहण है। और इस प्रकार यहाँ यज्ञकर्मणि वषट्कारः उच्चौस्तराम् एकश्रुतिः वा ये सूत्र में आये पद अन्वय होते है। और उससे यहाँ सूत्र का अर्थ होता है - यज्ञकर्म में वषट्कारः अर्थात् वौषट्- शब्द एकश्रुति उदात्ततर विकल्प से होता है।

यहाँ वषट्कारः इसमें कार शब्द का कैसे ग्रहण किया है इस विषय में अनेक मत हैं। यहाँ कार शब्द से वौषट् इस अव्यय का ग्रहण किया है ऐसा कुछ का मत है। वौषट्- शब्द से अन्य शब्दों का भी जैसे विकल्प से उदात्ततर और एकश्रुति हो उसके लिए कार शब्द का ग्रहण है ऐसा कुछ मत है। और इनके मत के अनुसार 'अस्तु श्रौषट्' यहाँ पर भी श्रौषट्- शब्द उदात्ततर स्वर विशिष्ट होता है। और अन्यो के मत से यहाँ कार ग्रहण अवर्ण से भी कार प्रत्यय होता है, यह इसका ज्ञापक है, इनके मत के अनुसार ही एवकार इत्यादि पद सिद्ध होते है। और अन्यों के मत से पाणिनि के सूत्र विचित्र होते हैं इसको बताने के लिए यहाँ कार शब्द का ग्रहण किया है। इस कारण से ही पाणिनीय सूत्रों में कही पर कम अक्षरों की प्रधानता होती है, और कही पर ज्ञान लाघव प्रधान होता है। और यहाँ वषट्कार वौषट् इस शब्द में निरूढ यह यहाँ प्रधान रूप से जानना चाहिए।

उदाहरण - सोमस्याग्ने वीहि वौ३षट्। सोमस्याग्ने वीहि३ वौ३षट् (ऐतरेय. ३.५.४.६)।

सूत्र अर्थ का समन्वय -उदाहरण से दिया यह मन्त्र यज्ञकर्म में प्रयुङ्क्त है। अतः वहाँ वर्तमान वौषट्-शब्द विकल्प से उदात्ततर होता है, और उसके अभाव पक्ष में एकश्रुति होती है।

विशेष - स्वरित स्वर से यदि अनुदात्त स्वर होता है, तब स्वरित स्वर का आधा भाग उदात्ततर स्वर विशिष्ट होता है यह तो सभी को ज्ञात ही है, परन्तु यहाँ विधीयमान उदात्ततर स्वर का उस

समय क्या स्वरूप है इस जिज्ञासा में कहते है - उच्चैः इससे उदात्त का ग्रहण करते हैं, यह उदात्त है, यह उदात्त है, यह इन दोनों में उससे अधिक उदात्त है उच्चैस्तराम् अर्थात् उदात्ततर है। वैसे ही उदात्त स्वर का जिस स्थान से उच्चारण करते हैं, उस उच्चतर स्थान से भी जब किसी स्वर का उच्चारण करते है, तब वह स्वर उदात्ततर है ऐसा कहलाता है। और उस प्रकार के उदात्ततर का ही यहाँ प्रकृत सूत्र से विकल्प का विधान है।

9.6 विभाषा छन्दसि॥ (१।२।३६)

सूत्र का अर्थ - वेद विषय में तीनो स्वरों को विकल्प से एकश्रुति हो जाती है।

सूत्र की व्याख्या - संज्ञा-परिभाषा-विधि-नियम-अतिदेश-अधिकार छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस छन्द में अर्थात् वेद में विकल्प से एकश्रुति का विधान है। इस सूत्र में विभाषा छन्दसि ये दो पद हैं। वहाँ विभाषा यह अव्ययपद है, और 'छन्दसि' ये सप्तमी एकवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ पर 'एकश्रुति' इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति आती है। छन्दसि यहाँ पर विषय सप्तमी है, अतः छन्द विषय में ऐसा अर्थ प्राप्त होता है। यहाँ पर पदों का अन्वय - छन्दसि एकश्रुतिः विभाषा है। और उससे सूत्र का अर्थ इस प्रकार होता है - छन्द विषय में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों की एकश्रुति विकल्प से होती है। छन्द में मन्त्रों की उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों की विकल्प से एकश्रुति होती है यह इस सूत्र का निष्कर्ष निकला है। यहाँ एकश्रुतिः यह विशेषण पद नहीं है, अपितु विशेष्य पद ही है। अतः उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों की एक अभिन्न श्रुति होती है ऐसा अर्थ यहाँ पर समझना चाहिए।

यहाँ यह जानना चाहिए की 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से जप, न्यूङ्ख, साम से भिन्न यज्ञकर्म में एकश्रुति का विधान सम्भव होने से प्रकृत सूत्र का प्रयोग स्थलों में छन्दों में भी एकश्रुति सम्भव है, परन्तु यहाँ एकश्रुति विकल्प से चाहिए है, अतः सूत्र में विभाषा यह पद दिया है। और भी यहाँ सूत्र में 'वा' इस पद के प्रयोग करने से ही कार्य सम्भव होने पर, विभाषा इस पद के ग्रहण करने से यज्ञकर्मणि इस पद की निवृत्ति हो जाती है। वैसे ही यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु इस सूत्र से जप, न्यूङ्ख, साम से भिन्न यज्ञकर्म में ही नित्य एकश्रुति का विधान है, अतः जप, न्यूङ्ख, साम से भिन्न में, और यज्ञकर्म से भिन्न स्थलों में छन्द में भी विकल्प से एकश्रुति हो उसके लिए इस नये सूत्र की रचना की है। उस प्रकृत से सूत्र से यज्ञकर्म भिन्न में स्वाध्याय काल में भी वेदों में विकल्प से एकश्रुति होती है।

उदाहरण - 'इषे त्वोर्जे त्वा। इषे त्वोर्जे त्वा' (वाज. सं. १.१.१)। 'अग्न आया हि वीतये। अग्न आया हि वीतये' (ऋ. ६.१६.१०)

सूत्र अर्थ का समन्वय - 'इषे त्वोर्जे त्वा। अग्न आया हि वीतये' इन दोनों मन्त्रों का प्रयोग छन्द में देखते है। अतः प्रकृत सूत्र से इन दोनों मन्त्र में उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों का विकल्प से एकश्रुति होती है। तथा एकश्रुति होने पर इन दोनों मन्त्रों में सभी जगह एक ही उदात्त स्वर का विधान होने पर 'इषे त्वोर्जे त्वा। अग्न आया हि वीतये' ये दोनों वैकल्पिक प्रयोग सिद्ध होते हैं।

विशेष – यहाँ विभाषा इस पद के ग्रहण से यज्ञकर्मणि इसकी निवृत्ति भी होती है, अलग से छन्दसि इस पद के ग्रहण से छन्द रूप में, यज्ञकर्म में, विकल्प से एकश्रुति प्राप्त होती ही है, परन्तु यहाँ कोई दोष नहीं है, उस 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र में यज्ञकर्मणी यहाँ पर कर्म शब्द के ग्रहण से यज्ञकर्म में, छन्द में उस सूत्र से नित्य ही एकश्रुति होती, प्रकृत सूत्र से वैकल्पिक एकश्रुति नहीं होती है। इस प्रकृत सूत्र के वैकल्पिक होने से 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से वहाँ निषेध जप, न्यूङ्ख, और साम में प्रकृत सूत्र से विकल्प में एकश्रुति प्राप्त होती है। परन्तु उन जप आदि पदों का यहाँ ग्रहण के अभाव होने से और 'छन्दसि' इस पद का ही उल्लेख होने से उन जप आदि में प्रकृत सूत्र से वैकल्पिक एकश्रुति नहीं होती है।

पाठगत प्रश्न 9.2

1. वाक्य कब एकश्रुति होता है?
2. सम्बुद्धि क्या है?
3. जप क्या है?
4. न्यूङ्ख क्या?
5. वषट् कार से किस शब्द का ग्रहण होता है?
6. उच्चैस्तराम् इसका क्या अर्थ है?
7. विकल्प से एकश्रुति कहाँ पर होती है?

9.7 न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः॥ (१.२.३७)

सूत्र का अर्थ – सुब्रह्मण्या नामवाले निगद में 'यज्ञकर्मणि' इससे और 'विभाषा छन्दसि' इससे प्राप्त एकश्रुति नहीं होती है, किन्तु स्वरित को उदात्त हो जाता है।

सूत्र की व्याख्या – छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह निषेध सूत्र है, और विधि सूत्र भी है। इससे एकश्रुति का निषेध होता है, और स्वरित के स्थान में उदात्त होता है। 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तु उदात्तः ये सूत्र में आये पदच्छेद है। वहाँ 'न' और 'तु' ये अव्ययपद है, सुब्रह्मण्यायाम् यह सप्तमी एकवचनान्त पद है, स्वरितस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, और उदात्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ 'एकश्रुति' इस प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति आ रही है। यहाँ पर भी एकश्रुतिः यह विशेषण पद नहीं है, अपितु विशेष्य पद ही है। अतः उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों की एक अभिन्न श्रुति है यह उसका अर्थ है। यहाँ 'सुब्रह्मण्यायाम् एकश्रुतिः न, स्वरितस्य तु उदात्तः' यह सूत्र में आये पद का अन्वय है। सुब्रह्मण्या यह नाम विशेष है। और उससे सुब्रह्मण्या नाम वाले निगद को जानना चाहिए। अथ यह निगद क्या है? इस जिज्ञासा में कहते है निगद शब्द में वर्तमान गद् – धातु से अपाद बन्ध अर्थक है, नि पूर्वक से गद् – धातु

हमेशा गद्यते इस कर्म अर्थ में 'नौ गदनदपठस्वनः' इस सूत्र से अप् – प्रत्यय होता है। और उसके बाद प्रक्रिया कार्य में निगदः यह रूप सिद्ध होता है, यहाँ नि शब्द प्रकर्ष अर्थ में है। ऊँचे से अपादबन्ध यजुरात्मक जो मन्त्र वाक्य पढ़ते हैं, वह निगद होते है। उस निगद में पाद व्यवस्था नहीं है, और न ही अर्द्ध ऋचा की व्यवस्था है। इस प्रकार यहाँ सूत्र का अर्थ होता है – सुब्रह्मण्या नामवाले निगद में एकश्रुति नहीं होती है, और सूत्र से प्राप्त स्वरित के स्थान में उदात्त होता है।

उदाहरण – 'सुब्रह्मण्योऽ३म् इन्द्रागच्छ, ह रिव आगच्छ, मेधातिथेर्मेष वृ षणश्वस्य मेने गौरावस्कन्दिन्नहल्यायै जार कौशिकब्राह्मण गौतमब्रुवाण श्वः सु त्यागमागच्छ मघवन्' (शत. ब्रा. ३.३.११९)।

सूत्र अर्थ का समन्वय – यहाँ उदाहरण मन्त्र का यज्ञकर्म में विहित होने से और छन्द में होने से 'यज्ञकर्मणि' इस और 'विभाषा छन्दसि' इन दो सूत्रों से प्राप्त एकश्रुति का प्रकृत सूत्र से निषेध प्राप्त होता है। और सुब्रह्मण्योऽ३म् यहाँ पर स्वरित के स्थान में उदात्त होने का उपदेश है। वैसे ही यत् प्रत्ययान्त सुब्रह्मण्य शब्द की स्त्रीत्व विवक्षा में वहाँ 'अजाद्यतष्टाप्' इस सूत्र से टाप् में टाप् के टकार की 'चुटू' इस सूत्र से टकार की और 'हलन्त्यम्' इस सूत्र से पकार की इत् संज्ञा में और 'तस्य लोपः' इससे उन दोनों इत् संज्ञा के लोप होने पर और विभक्ति कार्य होने पर सुब्रह्मण्य यह रूप बनता है। सुब्रह्मण्य शब्द का यत् प्रत्ययान्त होने से और उस यत् प्रत्यय के तित् होने से 'तित् स्वरितम्' इस सूत्र से यहाँ अन्त्य अकार को स्वरित स्वर होता है। टाप् के आकार के स्थान में और सुब्रह्मण्य शब्द के अकार के स्थान में विहित आकार 'स्थानेऽन्तरतमः' इस सूत्र से अन्तरतम होने से स्वरित ही होता है। यहाँ टाप् प्रत्यय के पित् होने से 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' इस सूत्र से आकार का अनुदात्त स्वर विशिष्ट होने पर भी उन दोनों में स्वरित अनुदात्त के स्थान में स्वरित ही होता है, 'स्वरितानुदात्तसन्निपाते स्वरितम्' इस सूत्र से स्वरित के और अनुदात्त के स्थान में स्वरित का ही निर्देश होने से। अतः पर सुब्रह्मण्या + ओम् इस अवस्था में 'ओमाङोश्च' इससे पररूप ओंकार होने पर 'सुब्रह्मण्योम्' इस शब्द का निपात अन्त होने से और उस निपात का 'निपाता आद्युदात्ताः' इस सूत्र से आद्युदात्त होने से और वहाँ आकार के और ओकार के स्थान में विहित ओंकार का ही स्वरित स्वर होता है। इस प्रकार 'सुब्रह्मण्योम्' यहाँ पर अन्तिम ओंकार स्वरित सिद्ध है। और उसके बाद प्रकृत सूत्र से ओकार के स्थान में सूत्र से प्राप्त स्वरित स्वर के स्थान में उदात्त स्वर का विधान है।

विशेष – यहाँ सुब्रह्मण्या + ओम् इस अवस्था में स्वरित के और उदात्त के स्थान में 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' इस सूत्र से एकादेश में उदात्त स्वर नहीं होता है, उस सूत्र में 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' इस सूत्र से अनुदात्तस्य इस पद की अनुवृति होने से उस सूत्र से उदात्त के और अनुदात्त के स्थान में ही उदात्त एकादेश होता है।

9.7.1 असावित्यन्तः॥ (वा. ६५१)

वार्तिक का अर्थ – उस निगद में ही प्रथमान्त का अन्त उदात्त होता है।

टिप्पणियाँ

वार्तिक की व्याख्या – यह वार्तिक 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा हुआ है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। असौ इति अन्तः ये वार्तिक में आये पदच्छेद हैं। वहाँ असौ यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, इति यह अव्ययम है, और अन्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। 'सुब्रह्मण्योम् सुब्रह्मण्योम् सुब्रह्मण्योम् इन्द्रागच्छ हरिव आगच्छ ..... वासुदेवस्य पुत्रः पशुपतेः पौत्रो नारायणस्य नप्ता रामभद्रस्य पिता महेन्द्रस्य पौत्रः कमलाकस्य प्रपौत्रो देवदत्तो यजते सुत्याम्' – निगद में इस प्रकार का विधान होने से जाना जाता है की मन्त्र में यजमान के नाम प्रथमान्त से प्रयोग करने चाहिए, और उससे पूर्व पुरूषों के नाम षष्ठ्यन्त से प्रयोग करने चाहिए। यहाँ वार्तिक में 'असौ' इस पद से उस यजमान का ही प्रथमान्त नामवाचक पद को ग्रहण किया है। अथ इस वार्तिक से उस यजमान नामवाचक के प्रथमान्त पद के अन्त का उदात्त स्वर करने का नियम है।

उदाहरण – गार्ग्यो यजते।

वार्तक अर्थ का समन्वय – गार्ग्यः यहाँ पर 'गर्गादिभ्यो यञ्' इस सूत्र से यञ् प्रत्यय का विधान है। और उस यञ्प्रत्यय का ञित होने से गार्ग्य शब्द का 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र से आद्युदात्त की प्राप्ति में प्रकृत वार्तिक से यहाँ अन्त के उदात्त स्वर का विधान किया है।

9.7.2 अमुष्येत्यन्तः॥ (वा. ६५२)

वार्तिक का अर्थ – षष्ठ्यन्त का भी अन्त उदात्त होता है।

वार्तिक की व्याख्या – यह वार्तिक 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा गया है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। यहाँ अमुष्य इति अन्तः ये वार्तिक में आये पदच्छेद है। यहाँ अमुष्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, इति यह अव्यय है, अन्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। यहाँ पर भी 'वासुदेवस्य पुत्रः पशुपतेः पौत्रो नारायणस्य नप्ता रामभद्रस्य पिता महेन्द्रस्य पौत्रः कमलाकस्य प्रपौत्रो देवदत्तो यजते सुत्याम्' – इस रूप से मन्त्र में षष्ठ्यन्त से विहित पद का अमुष्य इस पद से ग्रहण किया है। अतः इस वार्तिक से उस षष्ठ्यन्त से विहित पद के अन्त को उदात्त स्वर का विधान है।

यहाँ यह जानना चाहिए की स्यान्त के विना अन्य षष्ठ्यन्त पदो की यहाँ विवक्षा है। यहाँ स्यान्त षष्ठ्यन्त का तोड़ा हुआ पद है, 'स्यान्तस्योपोत्तमं च' इस वार्तिक में 'स्यान्तस्य' इस पद ग्रहण से।

उदाहरण – दाक्षेः पिता यजते।

सूत्र अर्थ का समन्वय – दाक्षेः यहाँ पर दाक्षि – शब्द का षष्ठी एकवचन का रूप है। दक्ष शब्द से 'अत इञ्' इस सूत्र से इञ्प्रत्यय करने पर इञ्प्रत्यय के ञकार की 'हलन्त्यम्' इस सूत्र से इत् संज्ञा करने पर 'तस्य लोपः' इस सूत्र से उस ञकार का लोप होने पर और प्रक्रिया कार्य में दाक्षेः यह रूप सिद्ध होता है। यहाँ इञ्प्रत्यय के ञित्त्वाद होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' इस सूत्र से आद्युदात्त की प्राप्ति में प्रकृत वार्तिक से यहाँ अन्त को उदात्त स्वर करने का विधान है।

9.7.3 स्यान्तस्योपोत्तमं च॥ (वा. ६५३)

वार्तिक का अर्थ – स्यान्त के और उपोत्तम के अन्त्य को उदात्त स्वर होता है।

वार्तिक की व्याख्या – यह वार्तिक 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा गया है। इससे उदात्त स्वर का विधान है। स्यान्तस्य उपोत्तमं च ये वार्तिक में आये पदच्छेद है। वहाँ स्यान्तस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, उपोत्तमम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, च यह अव्ययपद है। यहाँ स्यान्त पद से निगद में षष्ठ्यन्त से प्रयुज्यमान स्यान्त पदों का ग्रहण है। और इस प्रकार प्रकृत वार्तिक से उस पद के ही और उपोत्तम अर्थात् अन्त्य से पूर्व अन्त्य को उदात्त स्वर का विधान है। यहाँ चकार से अन्तः इस पद की अनुवृति आ रही है। उस प्रकृत वार्तिक से स्यान्त पद के अन्त्य का, और अन्त्य से पूर्व का उदात्त स्वर करने का विधान है।

उदाहरण – गार्ग्यस्य पिता यजते।

वार्तिक अर्थ का समन्वय – गार्ग्यस्य यहाँ पर गार्ग्यस्य यह स्यान्त पद है, उससे यहाँ ग्य – इस उपोत्तम अकार का और स्य – यहाँ अकार का प्रकृत वार्तिक से उदात्त स्वर का विधान है।

9.7.4 वा नामधेयस्य॥ (वा. ६५४)

वार्तिक का अर्थ – स्यान्त नामधेय का उपोत्तम उदात्त विकल्प से होता है।

वार्तिक की व्याख्या – यह वार्तिक भी 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र में पढ़ा गया है। इससे विकल्प से उदात्त स्वर का विधान है। यह दो पद वाला वार्तिक है। यहाँ वा यह अव्ययपद है, और नामधेयस्य यह षष्ठी एकवचनान्त पद है। 'स्यान्तस्योपोत्तमं च' इस वार्तिक से यहाँ स्यान्तस्य इस षष्ठी एकवचनान्त पद, उपोत्तमम् इस प्रथमा एकवचनान्त पद की यहाँ अनुवृति आ रही है। स्यान्तस्य यह नामधेय इस पद का विशेषण है। यहाँ नामधेयस्य इस पद से निगद में षष्ठ्यन्त से प्रयोग किये गये नामवाचक स्यान्त पदो का ग्रहण करते हैं। अतः प्रकृत वार्तिक से उस नामवाचक स्यान्त पद के उपोत्तमस्य अर्थात् अन्त्य से पूर्व का उदात्त स्वर करने का विधान है। यहाँ वा इस पदग्रहण से वह उदात्त स्वर विकल्प से होता है। इस वार्तिक से जिस पक्ष में उपोत्तम के उदात्त स्वर का अभाव है उस पक्ष में स्यान्त के अन्त का उदात्त स्वर होता है। यह भी अन्त स्थानीय उदात्त स्वर इस वार्तिक से ही होता है।

उदाहरण – देवदत्तस्य पिता यजते।

वार्तिक अर्थ का समन्वय – देवदत्तस्य यह नामवाचक पद है, किन्तु यहाँ यह पद स्यान्त है। अतः प्रकृत वार्तिक से यहाँ नामवाचक देवदत्तस्य इस पद के उपोत्तमस्य अर्थात् अन्त्य से पूर्व का विकल्प से उदात्त स्वर होता है। उसके अभाव पक्ष में अन्तस्य इसके स्य – इसके अकार को उदात्त स्वर होता है।

पाठगत प्रश्न 9.3

1. विभाषा छन्दसि इस सूत्र में विभाषा इस पद का ग्रहण कैसे किया है?
2. निगद क्या है?
3. निगद में यजमान के नामवाचक प्रातिपदिक में कौन सी विभक्ति होती है?
4. अमुष्येत्यन्तः इस वार्तिक से कैसे स्यान्तस्य षष्ठ्यन्त पद का अन्त उदात्त नहीं होता है?
5. उपोत्तमं नाम क्या है?

9.8 देवब्रह्मणोरनुदात्तः॥ (१.२.३८)

सूत्र का अर्थ- देव ब्रह्मन् शब्दों को स्वरित के स्थान में अनुदात्त होता है, सुब्रह्मण्या निगद में।

सूत्र की व्याख्या - छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधि सूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। देवब्रह्मणोः अनुदात्तः ये सूत्र में आये पदच्छेद हैं। वहाँ देवब्रह्मणोः ये सप्तमी द्विवचनान्त पद है। और अनुदात्तः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। पूर्व 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र से स्वरितस्य इस षष्ठ्यन्त तथा सुब्रह्मण्यायाम् इस सप्तम्यन्त पद की यहाँ अनुवृति है। सुब्रह्मण्यायां देवब्रह्मणोः स्वरितस्य अनुदात्तः यह पद का अन्वय है। देवब्रह्मणोः यहाँ पर 'देवश्च ब्रह्मा च इत्यनयोः द्वन्द्व समास में 'देवब्रह्माणौ, तयोः देवब्रह्मणोः। इस देव शब्द में, ब्रह्मन् शब्द मे परे इस अर्थ में है। अनुदात्तः यह प्रथमान्त विधीयमान पद है। सुब्रह्मण्यायाम् इसके सुब्रह्मण्य नाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में इस अर्थ में। इस प्रकार सूत्र अर्थ होता है - सुब्रह्मण्य नाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में देव ब्रह्मन् शब्द के स्वरित के स्थान में अनुदात्त स्वर होता है। 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र से उदात्त प्राप्ति प्रकृत सूत्र से उसको अनुदात्त स्वर होता है ऐसा जानना चाहिए।

उदाहरण- देवा ब्रह्माण आगच्छत् इति।

सूत्र अर्थ का समन्वय - सुब्रह्मण्यनाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में देवशब्द तथा ब्रह्मण्-शब्द का प्रयोग है। अतः देवा ब्रह्माण आगच्छत् इस उदाहरण में देवा यहाँ पर वकार से उत्तर आकार का तथा ब्रह्माण यहाँ ह्मा से उत्तर आकार का 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इससे उदात्त की प्राप्ति है इस प्रकृत सूत्र से उसको अनुदात्त स्वर का विधान है।

9.9 स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम्॥ (१.२.३९)

सूत्र का अर्थ- स्वरित से उत्तर संहिता विषय में अनुदातों को एकश्रुति होती है।

सूत्र की व्याख्या - छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। वहाँ स्वरिताद् यह पञ्चमी एकवचनान्त पद है, संहितायाम यह सप्तमी एकवचनान्त तथा अनुदात्तानाम यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। 'एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ' इस सूत्र से यहाँ एकश्रुतिः इस

एकवचनान्त पद की अनुवृति आती है। स्वरिताद् यह पञ्चम्यन्त पद है, अतः तस्मादित्युत्तरस्य इस परिभाषा से स्वरित से परे इस अर्थ को जानना चाहिए। एकश्रुतिः यह प्रथमान्त पद है, अतः उसका विधायक पद है। अनुदातों का यहाँ जाति में बहुवचन है। उससे एक दो और बहुतों की विधि समझनी चाहिए। अतः अनुदात्तानाम् इसका अर्थ है, अनुदात्त का, दो अनुदातों का, अथवा अनेक अनुदात्तों का। संहितायाम् यहाँ पर विषय सप्तमी है। 'एका श्रुतिः यस्य तत् एकश्रुति' इति बहुव्रीहि समास है। श्रवण को श्रुति कहते है। दूर से बुलाने पर, उदात्त-अनुदात्त-स्वरित स्वरों की एकश्रुति होती है। जहाँ उदात्त अनुदात्त स्वरित के पृथक् कोई भी स्वर सुनाई नहीं देता है, वह एकश्रुति स्वर है। संहितायां स्वरिताद् अनुदात्तानाम् एकश्रुतिः स्याद ये सूत्र में आये पदों का अन्वय है। सम्पूर्ण रूप से सूत्र का अर्थ होता है - संहिता के होने पर स्वरित स्वर से परे विद्यमान अनुदात्त स्वरों की एकश्रुति होती है, अर्थात् कोई भी विशिष्ट स्वर सुनाई नहीं देता है यह भाव है।

उदाहरण- इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति।

सूत्र अर्थ का समन्वय- इस उदाहरण में 'मे' इस शब्द में स्वरित स्वर है। उससे परे गङ्गे-यमुने इत्यादि शब्द है। और ये अनुदात्त है। स्वरित स्वर से परे विद्यमान होने से अनुदातो की उन गङ्गे यमुने इत्यादि शब्दों की एकश्रुति सिद्ध होती है।

9.10 उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः॥ (१.२.४०)

सूत्र का अर्थ- उदात्तस्वरितौ परौ यस्मात्तस्य अनुदात्तस्य सन्नतरः स्यात्।

सूत्र की व्याख्या - छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद विद्यमान है। वहाँ 'उदात्तस्वरितपरस्य' यह षष्ठी एकवचनान्त पद है, सन्नतरः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है, किन्तु अनुदात्तानाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। अनुदात्त ग्रहण की अनुवृति आती है। उदात्तस्वरितपरस्य यहाँ पर 'पर' शब्द का प्रत्येक के साथ अभिसम्बन्ध है। उदात्त परे है जिससे वह उदात्तपरः, स्वरित परे है जिससे वह स्वरितपरः। उदात्त परे और स्वरित परे अनुदात्तके स्थान में अनुदात्तर आदेश हो जाता है। सन्न शब्द का नीचे के इस अर्थ में प्रयोग है। अतः सन्नतर इसका अर्थ अनुदात्ततर है। और इस प्रकार सूत्र का अर्थ होता है - उदात्त स्वर और स्वरित स्वर जब परे रहते है, तब पूर्व के अनुदात्त स्वर को अनुदात्तर आदेश होता है।

उदाहरण- इमं मे गङ्गे सरस्वति शुतुद्रि व्यचक्षयत्स्वः, माणवक जटिलकाध्यापक क्व गमिष्यसि इति च।

सूत्र अर्थ का समन्वय- वेद में सम्बोधन पद को आमन्त्रित शब्द से कहते हैं। और अनुदात्त स्वर निघात शब्द को कहते है। यहाँ 'मे' शब्दको आश्रित करके सरस्वति यहाँ पर आमन्त्रित निघात है। शुतुद्रि शब्द का तो पाद आदि होने से निघात नहीं होता है। पाद के आदि में विद्यमान होने से, आमन्त्रित होने से षष्ठी से और आमन्त्रित के स्थान से शुतुद्रि शब्द के शकार से उत्तर उकार उदात्त होता है, अतः उसके परे होने पर पूर्व सरस्वति शब्द की इकार के स्थान से अनुदात्त के स्थान में अनुदात्तर आदेश होता है। व्यचक्षयत्स्वः यहाँ पर 'वि-इति' उपसर्ग होने से आद्युदात्त है।

वि इससे परे अचक्षयत्स्व इस तिङन्त की तिङ् इससे निघात है। स्व: यहाँ 'न्यङ्स्वरौ स्वरितौ' इससे स्वरित है। उस स्वरित स्वर परे होने पर ऊपर के सूत्र से यकार उत्तर अकार को सन्नतर (अनुदात्ततर) स्वर सिद्ध होती है।

द्वितीय उदाहरण में क्व इस शब्द में स्वरित स्वर विद्यमान है। अत: उससे परे होने पर अध्यापक शब्द के ककार से उत्तर अकार अनुदात्त है, उसका इस सूत्र से सन्नतर आदेश होता है।

9.11 अनुदात्तं च॥ (८.१.३)

सूत्र का अर्थ- जिसकी आम्रेडित संज्ञा होती है वह अनुदात्त भी होता है।।

सूत्र की व्याख्या - छ: प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद विद्यमान है। वहाँ अनुदात्तम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। च यह अव्ययपद है। पूर्व से 'तस्य परमाम्रेडितम्' इस सूत्र में आम्रेडित संज्ञा करते है। 'सर्वस्य द्वे' इस अधिकार में यह सूत्र है। इस अधिकार में कहे हुए शब्दों को द्वित्व होता है। द्वित्व करने पर उन दोनों शब्दों के मध्य में जो दूसरा शब्द है, उसकी 'तस्य परमाम्रेडितम्' इस सूत्र से आम्रेडितसंज्ञा होती है। आम्रेडित का उदाहरण है- चौर चौर, वृषल वृषल, दस्यो दस्यो घातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा इत्यादि। उस आम्रेडित संज्ञक की इस सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है। और इस प्रकार सम्पूर्ण सूत्र का अर्थ होता है की दो कहे हुए शब्दों के मध्य में जो पर है, उसको अनुदात्त हो।

उदाहरण- दिवेदिवें इति।।

सूत्र अर्थ का समन्वय- इस उदाहरण में दिवे दिवे यहाँ पर दो बार दिवे-शब्द का प्रयोग है। अत: दूसरे दिवे-शब्द का इस सूत्र से अनुदात्त स्वर होता है।

विशेष- प्रकृति स्वर में प्राप्त पर के स्थान में अनुदात्त कहा है। अनुदात्त शब्द यहाँ पर शास्त्रीय अनुदात्त नहीं है, तो क्या है? इसका यहाँ अन्वर्थ ही ग्रहण किया है। उसका विग्रह होता है अविद्यमान उदात्त को अनुदात्त को। शास्त्रीय अनुदात्त की यदि विवक्षा होती तो वहाँ सम्बन्ध अर्थ में षष्ठी का उच्चारण होता है यह विशेष है।

पाठगत प्रश्न 9.4

1. 'सुब्रह्मण्यायाम्' इसका क्या अर्थ है?
2. 'देवब्रह्मणोरनुदात्त:' इस सूत्र का क्या अर्थ है?
3. 'सुब्रह्मण्यायाम् उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतर:' इस सूत्र में विधीयमान एकश्रुति स्वर क्या है?
4. 'स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम्' इस सूत्र का क्या अर्थ है?

5. सन्नतर नाम क्या है?

6. वेद में आमन्त्रित शब्द का अर्थ क्या है?

7. 'उदात्तस्वरितपरस्य' का विग्रह लिखिए।

8. 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः' इस सूत्र का अर्थ लिखिए।

9. 'अनुदात्तं च' इस सूत्र का अर्थ लिखिए।

10. 'अनुदात्तं च' इस सूत्र में अनुदात्त शब्द का अर्थ क्या है?

पाठ का सार

उदात्त से परे अनुदात्त को स्वरित होता है, परन्तु यदि अनुदात्त के परे उदात्त अथवा स्वरित हो तो पूर्व अनुदात्त के स्थान में स्वरित नहीं होता है। गार्ग्य आदि ऋषियों के मत में तो स्वरित ही होता है उसका निषेध नहीं होता है। दूर से सम्बोधन वाक्य की एकश्रुति का विधान है। यहाँ एकश्रुति विषय में विग्रह सहित उदाहरण का भी वर्णन है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों के लोप को ही एकश्रुति कहते हैं। 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से जप, न्यूङ्ख और साम से भिन्न यज्ञकर्म के मन्त्र में एकश्रुति होती है। जप अनुकरण मन्त्र को कहते है, न्यूङ्खा नाम सोलह प्रकार के ओकार को कहते है, और साम वाक्य विशेषस्थ गीत को कहते है। यहाँ वषट्कारः इस पद से वौषट् इस अव्ययपद को ग्रहण करते है। यहाँ कार शब्द के ग्रहण करने के विषय में अन्य भी अनेक मत है। 'विभाषा छन्दसि' इस सूत्र से छन्द में विकल्प से एकश्रुति का विधान है। 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः' इस सूत्र से सुब्रह्मण्य नामवाले निगद में 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र से विभाषा छन्दसि इस सूत्र से प्राप्त एकश्रुति का निषेध होता, और स्वरित स्वर के स्थान में उदात्त स्वर का विधान है। जिस मन्त्र वाक्य में पाद व्यवस्था नहीं होती है, उसे निगद कहते है। सुब्रह्मण्या+ओम् इत्यादि स्थलों में स्वरित स्वर का और उदात्त स्वर के स्थान में एकादेश उदात्तेनोदात्तः इस सूत्र से एकादेश में उदात्त स्वर नहीं होता है, उस सूत्र में अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः इस सूत्र से अनुदात्तस्य इस पद की अनुवृति आती है, किन्तु उस एकादेश विधायक सूत्र से उदात्त अनुदात्त के स्थान में ही एकादेश उदात्त होता है, उदात्त स्वरित के स्थान में एकादेश नहीं होता है। असावित्यन्तः इस वार्तिक से निगद में प्रथमान्त पद का अन्त उदात्त होता है। स्यान्तस्योपोत्तमं च इस वार्तिक से स्यान्त पद के अन्त के और अन्त से पूर्व उदात्त स्वर होता है। वा नामधेयस्य इस सूत्र से नामवाचक स्यान्त पद के अन्त से पूर्व को विकल्प से उदात्त स्वर होता है, जिस पक्ष में वहाँ अन्त से पूर्व उदात्त नहीं होता है, वहाँ अन्त के स्थान में उदात्त स्वर होता है। देव ब्रह्मण शब्दों के स्वरित के स्थान में अनुदात्त हो। किन्तु स्वरित से परे अनुदात्त की एकश्रुति हो। दोबार कहे हुए शब्दों में बाद वाला आम्रेडित संज्ञक शब्द अनुदात्त होता है।

पाठांत प्रश्न

1. 'अग्निमीळे' इस रूप को स्वर सहित सिद्ध कीजिए।
2. 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
3. 'एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. 'उच्चैस्तरां वा वषट्कार:' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
6. 'विभाषा छन्दसि' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
7. 'न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्त:' इस सूत्र का एक उदाहरण लिखिए।
8. 'असावित्यन्त:' इस वार्तिक की व्याख्या कीजिए।
9. 'देवब्रह्मणोरनुदात्त:' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
10. 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतर:' इस सूत्र के उदाहरण के प्रकारों को लिखिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

9.1

1. स्वरित स्वर का विधान है।
2. स्वरित स्वर।
3. 'उदात्तानुदात्तस्य स्वरित:' इसके असिद्ध होने से।
4. 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्' इससे।
5. गार्ग्य-काश्यप-गालव ऋषियों के मत में।
6. पर इस अर्थ में।

9.2

1. दूर से संबोधन करने वाले वाक्य में एकश्रुति होती है।
2. संबोधन करता है, जिस वाक्य से वह सम्बुद्धि है।
3. अनुकरण मन्त्र अथवा उपांशु प्रयोग जप है।
4. न्यूङ्ख नाम सोलह ओकार का है।
5. वौषट् - यह शब्द है।

6. अतितर उदात्त है।
7. छन्द में।

9.3

1. यज्ञकर्मणि इस पद की निवृत्ति के लिए।
2. उच्चै अपाद बन्ध यजुरात्मक है क्योकि जो मन्त्र वाक्य पढ़ते है वे निगद होते है।
3. प्रथमा विभक्ति।
4. 'स्यान्तस्योपोत्तमं च' इस वार्तिक से स्यान्तस्य इस पद ग्रहण से।
5. अन्त्य से पूर्व।

9.4

1. सुब्रह्मण्य नाम यजुर्वेद के मन्त्र विशेष में यह अर्थ है।
2. देव ब्रह्मण शब्द में स्वरित के स्थान में अनुदात्त हो यह अर्थ है।
3. जहाँ उदात्त, अनुदात्त, स्वरित का पृथक् से कोई भी स्वर सुनाई नहीं देता है वह एकश्रुति स्वर है।
4. स्वरित से परे अनुदात्तों की संहिता में या एकश्रुति हो यह अर्थ है।
5. अनुदात्ततर है।
6. सम्बोधन पद को।
7. उदात्त परे है जिससे वह उदात्तपरः, स्वरित परे है जिससे वह स्वरितपरः।
8. उदात्त स्वरित के परे जिससे उस अनुदात्त के स्थान में अनुदात्तर हो।
9. दो बार कहे हुए शब्दों के पर रूप को अनुदात्त हो।।
10. अविद्यमान उदात्त को, अनुदात्त को।

।। नौंवाँ पाठ समाप्त।।